स्वयं शुश्रूषणाद्धर्म्यान्मातापित्रोश्च वै तथा। द्वादशाक्षरमाहात्म्यात्तपसश्च प्रभावतः ॥९७॥
तस्याभिमानमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य हि। देवासुराणामाचार्यः श्लोकमत्रोशना जगौ॥९८॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य महोऽस्य तपसः फलम्। यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥९९॥
ध्रुवस्य जननी चेयं सुनीतिर्नाम सूनृता। अस्याश्च महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं भुवि॥१००॥
त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति। स्थानं प्राप्ता परं धृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ॥१०१॥
यश्चैतत्कीर्त्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१०२॥
स्थानभ्रंशं न चाप्नोति दिवि वा यदि वा भुवि। सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ॥१०३॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेऽशे द्वादशोऽध्यायः

तेरहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

ध्रुवाच्छिष्टिं च भव्यं च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत। शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्चपुत्रानकल्मषान्॥१॥
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम्॥२॥
अजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम्। प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥३॥

करने, अपने धर्म का पालन करने वाले, द्वादशाक्षर मन्त्र की महिमा के कारण तथा तपस्या के प्रभाव से ध्रुव के असामान्य ऐश्वर्य तथा महिमा को देखकर देवताओं तथा असुरों के आचार्य शुक्राचार्य ने इन श्लोकों का गान किया है॥९८॥ ध्रुव की तपस्या का बल आश्चर्यकारी है, इसकी तपस्या का फल प्रशंसनीय है, क्योंकि इस ध्रुव को ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हैं ॥९९॥ ध्रुव की माता सुनीति भी सुनृत (सुशील तथा सत्यवादिनी) हैं, संसार में उसकी महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ?॥१००॥ जो अपनी कुक्षि में ध्रुव को धारण करके त्रैलोक्य के आश्रयभूत सर्वोत्तम स्थान को प्राप्त कर ली तथा जो स्थान भविष्य में भी स्थिर रहने वाला है ॥१०१॥ जो व्यक्ति ध्रुव के इस द्युलोकारोहरण के प्रसङ्ग का कीर्तन करता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर स्वर्गलोक में सम्मानित होता है ॥१०२॥ वह चाहे स्वर्गलोक में रहे अथवा भूलोक में, अपने स्थान से वह कभी भी च्युत नहीं होता है। सभी कल्याणों से सम्पन्न होकर वह दीर्घकाल तक जीवित रहता है ॥१०३॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

राजा वेन तथा पृथु का चरित्र

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— ध्रुव से उसकी पत्नी में शिष्टि तथा भव्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। भव्य से शम्भु का जन्म हुआ। शिष्टि से उसकी पत्नी सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को अपने गर्भ में धारण किया ॥१॥ उनके नाम है— रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल और वृकतेजस। रिपु के बृहती के गर्भ से महातेजस्वी चाक्षुष का जन्म हुआ ॥२॥ चाक्षुष से महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री तथा वारुण कुल में उत्पन्न पुष्करिणी ने मनु को उत्पन्न किया।

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः। कन्यायां तपतां श्रेष्ठवैराजस्य प्राजापतेः ॥४॥
कुरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाञ्छुचिः। अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां महौजसः ॥५॥
कुरोरजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्। अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं शिविम् ॥६॥
अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत। प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥७॥
वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने। वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्त्तितः ॥८॥
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात् ॥९॥

श्रीमैत्रेय उवाच

किमर्थं मथितः पाणिर्वेनस्य परमर्षिभिः। यत्र जज्ञे महावीर्यः स पृथुर्मुनिसत्तम ॥१०॥

श्रीपराशर उवाच

सुनीथा नाम या कन्या मृत्योः प्रथमतोऽभवत्। अङ्गस्य भार्या सा दत्ता तस्यां वेनो व्यजायत ॥११॥
स मातामहदोषेण तेन मृत्योः सुतात्मजः। निसर्गादेष मैत्रेय दुष्ट एव व्यजायत ॥१२॥
अभिषिक्तो यदा राज्ये स वेनः परमर्षिभिः। घोषयामास स तदा पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥१३॥
न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं कथञ्चन। भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः ॥१४॥
ततस्तमृषयः पूर्वं सम्पूज्य पृथिवीपतिम्। ऊचुः सामकलं वाक्यं मैत्रेय समुपस्थिताः ॥१५॥

ऋषयः ऊचुः

भो भो राजन् शृणुष्व त्वं यद्वदाम महीपते। राज्यदेहोपकाराय प्रजानां च हितं परम् ॥१६॥
दीर्घसत्रेण देवेशं सर्वयज्ञेश्वरं हरिम्। पूजयिष्याम भद्रं ते तस्यांशस्ते भविष्यति ॥१७॥

(ये षष्ठ मन्वन्तर के अधिपति हुए) ॥३॥ हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! वैराज प्रजापति की पुत्री नड्वला में मनु के दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र, नवाँ सुद्युम्न तथा दशवाँ अभिमन्यु ये दशो नड्वला के पुत्र तथा महातेजस्वी थे ॥५॥ कुरु ने अपनी पत्नी आग्नेयी में, अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिवि इन छह महातेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया ॥६॥ अङ्ग का सुनीथा में वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सन्तान की प्राप्ति के लिए ऋषियों ने वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किया ॥७॥ हे महामुने ! बेन के हाथ का मन्थन करने पर उससे वैन्य नामक राजा प्रकट हुए, वे ही पृथु के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८॥ उन्होंने प्रजाओं का कल्याण करने के लिए पृथिवी का दोहन किया था ॥९॥ **श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! किस कारण से परमर्षियों ने वेन के हाथ का मन्थन किया ? जिससे महापराक्रमी महाराज पृथु उत्पन्न हुए ?॥१०॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** मृत्यु की जो सुनीथा नाम की प्रथम पुत्री थी, उसका विवाह अङ्ग से हुआ और उसके पुत्र वेन हुए॥११॥ हे मैत्रेय ! मृत्यु की पुत्री का पुत्र वेन अपने मातामह (नाना) के दोष के कारण स्वभाव से ही दुष्ट प्रकृति का हो गया ॥१२॥ जब परमर्षियों ने उसे राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया, उसी समय उस राजा ने सम्पूर्ण पृथिवी पर घोषणा करा दी ॥१३॥ मैं ही यज्ञों का स्वामी हूँ। मुझसे भिन्न यज्ञों का भोक्ता दूसरा कौन होगा ? अतएव कोई भी किसी हालत में यज्ञ, दान एवं होम न करे ॥१४॥ हे मैत्रेय ! उसके पश्चात् उस राजा के पास उपस्थित होकर सभी ऋषियों ने उसकी खूब प्रशंसा की, उसके बाद उन लोगों ने सामयुक्त वाणी में कहा ॥१५॥ **ऋषियों ने कहा—** राजन् ! हमलोग जो कह रहे हैं, उसे आप सुनें। आपके राज्य, देह तथा प्रजाओं का कल्याण के लिए हम कुछ कह

यज्ञेन यज्ञपुरुषो विष्णुः सम्प्रीणितो नृप । अस्माभिर्भवतः कामान्सवनिव प्रदास्यति ॥१८॥
यज्ञैर्यज्ञेश्वरो येषां राष्ट्रे सम्पूज्यते हरिः । तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूभृताम् ॥१९॥

वेन उवाच

मत्तः कोऽभ्यधिकोऽन्योऽस्ति कश्चाराध्यो ममापरः । कोऽयं हरिरिति ख्यातो यो वो यज्ञेश्वरो मतः ॥२०॥
ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिन्द्रो वायुर्यमो रविः । हुतभुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ॥२१॥
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः । नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ॥२२॥
एवं ज्ञात्वा मयाज्ञप्तं यद्यथा क्रियतां तथा । न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं च भो द्विजाः ॥२३॥
भर्तृशुश्रूषणं धर्मो यथा स्त्रीणां परो मतः । ममाज्ञापालनं धर्मो भवतां च तथा द्विजाः ॥२४॥

ऋषय ऊचुः

देह्यनुज्ञां महाराज मा धर्मो यातु संक्षयम् । हविषां परिणामोऽयं यदेतदखिलं जगत् ॥२५॥

श्रीपराशर उवाच

इति विज्ञाप्यमानोऽपि स वेनः परमर्षिभिः । यदा ददाति नानुज्ञां प्रोक्तः प्रोक्तः पुनःपुनः ॥२६॥
ततस्ते मुनयः सर्वे कोपामर्षसमन्विताः । हन्यतां हन्यतां पाप इत्यूचुस्ते परस्परम् ॥२७॥
यो यज्ञपुरुषं विष्णुमनादिनिधनं प्रभुम् । विनिन्दत्यधमाचारो न स योग्यो भुवः पतिः ॥२८॥
इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्मुनिगणा नृपम् । निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ॥२९॥
ततश्च मुनयो रेणुं ददृशुः सर्वतो द्विज । किमेतदिति चासन्नान्पप्रच्छुस्ते जनांस्तदा ॥३०॥

रहे हैं ॥१६॥ राजन् आपका कल्याण हो । हमलोग बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा देवताओं के स्वामी श्रीहरि की जो आराधना करेंगे उसके फल का षष्ठ (छठा) भाग आपको प्राप्त होगा ॥१७॥ राजन् ! हमलोगों के द्वारा किए गये यज्ञों से प्रसन्न होकर यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु आपकी सारी कामनाओं को पूर्ण करेंगे ॥१८॥ जिन राजाओं के राज्य में यज्ञों के द्वारा यज्ञेश्वर श्रीहरि की पूजा की जाती है राजन् उन राजाओं के समस्त अभिलषित पदार्थों को श्रीहरि प्रदान करते हैं ॥१९॥ **वेन ने कहा—** मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है ? जो मेरा भी आराध्य है । कौन है जो हरि शब्द से कहा जा है ? अथवा जो यज्ञेश्वर हो ॥२०॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी तथा चन्द्रमा एवं इनसे भिन्न दूसरे देवता जो शाप देने तथा अनुग्रह करने में समर्थ हैं, वे सबके सब राजा के शरीर में निवास करते है, अतएव राजा सर्वदेवमय होता है ॥२२॥ इन सारी बातों को जानकर मै जैसी आज्ञा देता हूँ आपलोग वैसा ही करें । ब्राह्मणों आपलोगों को कोई भी दान, यज्ञ अथवा होम नहीं करना चाहिए।२३॥ ब्राह्मणों ! जिस तरह स्त्री का परम धर्म अपने पति की सेवा करना कहा गया है, उसी तरह आपलोगों का परम धर्म हमारी आज्ञा का पालन करना है ॥२४॥ **ऋषियों ने कहा—** महाराज आप हमें ऐसी आज्ञा दे कि धर्म क्षय न हो यह सारा जगत् यज्ञ में किए जाने वाले हविष्य को होम का ही परिणाम है ॥२५॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से परमर्षियों द्वारा बार-बार कहे जाने पर भी जब वेन ने उन्हें धर्माचरण करने की अनुज्ञा नहीं प्रदान की तो वे ऋषिगण क्रुद्ध हो गये और आमर्ष से युक्त होकर वे आपस में कहने लगे, इसको मार डालो, इसको मार डालो यह पापी है ॥२६-२७॥ जो अनादि एवं अनन्त यज्ञ पुरुष प्रभु विष्णु की निन्दा करता है वह पृथिवी का स्वामी होने लायक नहीं है ॥२८॥ इस तरह से कहकर वे मुनिगण, भगवान् विष्णु की निन्दा करने के कारण पहले से ही मरे हुए वेन को मन्त्र से पवित्र किए हुए कुशों द्वारा मार डाला ॥२९॥ हे द्विज ! उसके पश्चात् मुनियों ने देखा कि चारो ओर धूल उड़ रही है । उन लोगों ने सन्निकट के लोगों से पूछा यह क्या है ?॥३०॥ लोगों

आख्यातं च जनैस्तेषां चोरीभूतैरराजके। राष्ट्रे तु लोकैरारब्धं परस्वादानमातुरैः ॥३१॥
तेषामुदीर्णवेगानां चोराणां मुनिसत्तमाः। सुमहान् दृश्यते रेणुः परवित्तापहारिणाम् ॥३२॥
ततः सम्मन्त्र्य ते सर्वे मुनयस्तस्य भूभृतः। ममन्थुरूरुं पुत्रार्थमनपत्यस्य यत्नतः ॥३३॥
मथ्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल। दग्धस्थूणाप्रतीकाशः खर्व्वाटास्योऽतिह्रस्वकः ॥३४॥
किंकरोमीति तान्सर्वान्स विप्रानाह चातुरः। निषीदेति तमूचुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत् ॥३५॥
ततस्तत्सम्भवा जाता विन्ध्यशैलनिवासिनः। निषादा मुनिशार्दूल पापकर्मोपलक्षणाः ॥३६॥
तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः। निषादास्ते ततो जाता वेनकल्मषनाशनाः ॥३७॥
तस्यैव दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्ते ततो द्विजाः ॥३८॥
मथ्यमाने च तत्राभूत्पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥३९॥
आद्यमाजगवं नाम खात्पपात ततो धनुः। शराश्च दिव्या नभसः कवचं च पपात ह ॥४०॥
तस्मिन् जाते तु भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ॥४१॥
सत्पुत्रेणैव जातेन वेनोऽपि त्रिदिवं ययौ। पुन्नाम्नो नरकात् त्रातःसुतेन सुमहात्मना ॥४२॥
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः। तोयानि चाभिषेकार्थं सर्वाण्येवोपतस्थिरे ॥४३॥
पितामहश्च भगवान्देवैराङ्गिरसैः सह। स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः
समागम्य तदा वैन्यमभ्यसिञ्चन्नराधिपम् ॥४४॥
हस्ते तु दक्षिणे चक्रं दृष्ट्वा तस्य पितामहः। विष्णोरंशं पृथुं मत्वा परितोषं परं ययौ ॥४५॥
विष्णुचक्रं करे चिह्नं सर्वेषां चक्रवर्तिनाम्। भवत्यव्याहतो यस्य प्रभावस्त्रिदशैरपि ॥४६॥

ने मुनियों को बतलाया कि राजा के नहीं रहने के कारण जो आतुर (दुःखी) लोग हैं वे चोर हो गये हैं और दूसरों की धन सम्पत्ति को लूट रहे हैं ॥३१॥ हे मुनिवरों ! उन दूसरों की सम्पत्ति लूटने वालों के वेग के कारण यह अत्यधिक धूलि दीख रही है ॥३२॥ उसके पश्चात् आपस में मन्त्रणा करके उन मुनीश्वरों ने पुत्रहीन राजा की जंघा का पुत्र प्राप्ति के लिए मन्थन किया ॥३३॥ उस मन्थन से राजा की जङ्घा से एक पुरुष निकला वह जले हुए स्थूणा के समान काला, नाटा तथा छोटे मुख वाला था ॥३४॥ उसने अत्यन्त आतुर होकर उन मुनियों से पूछा कि मैं क्या करूँ ? तो ऋषियों ने कहा निषीद (बैठ जाओ) । उसी से वह निषाद हो गया ॥३५॥ हे मुनियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! उसकी जो सन्तान हुयी वह विन्ध्य पर्वत में निवास करने वाली तथा पाप परायण हुयी और वे ही निषाद हुए ॥३६॥ उस निषाद के द्वारा उस राजा का पाप निकल गया इस तरह से वे निषाद राजा वेन के पाप को विनष्ट करने वाले बन गये ॥३७-३८॥ उसके पश्चात् वे ऋषिगण राजा वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किए । मन्थन करने से राजा वेन के प्रतापी पुत्र पृथु उत्पन्न हुए । उनका शरीर प्रदीप्त अग्नि के समान चमक रहा था ॥३९॥ उसके पश्चात् आकाश से अजगव नामक आद्य धनुष दिव्य बाण तथा कवच गिरे ॥४०॥ महाराज पृथु के उत्पन्न होने से सारी प्रजाएँ प्रसन्न हो गयी ॥४१॥ उस सत्पुत्र के उत्पन्न होने से राजा वेन भी स्वर्ग चले गये । महात्मा पृथु नामक पुत्र ने उनकी पुम् नामक नरक से रक्षा कर लिया । महाराज पृथु का अभिषेक करने के लिए सभी नदियाँ तथा समुद्र अनेक प्रकार के रत्न तथा जल लेकर उपस्थित हुए ॥४३॥ अङ्गिरस देवताओं के साथ ब्रह्माजी तथा समस्त स्थावर तथा जङ्गम भूत (जीव) आकर वेन के पुत्र महाराज पृथु का अभिषेक किए ॥४४॥ उनके दाहिने हाथ में चक्र का चिह्न देखकर ब्रह्माजी ने उन्हें भगवान् विष्णु का अंश माना और अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥४५॥ जिनका प्रभाव देवताओं के द्वारा भी

महता राजराज्येन पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ॥४७॥
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥४८॥
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः। पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥४९॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया। सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥५०॥
तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सम्यां समुत्पन्नः सोत्येऽहनि महामतिः ॥५१॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः। प्रोक्तौ तदा मुनिवरैस्तावुभौ सूतमागधौ॥५२॥
स्तूयतामेष नृपतिः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चापरम् ॥५३॥
ततस्तावूचतुर्विप्रान्सर्वानेव कृताञ्जली। अद्य जातस्य नो कर्म ज्ञायतेऽस्य महीपतेः ॥५४॥
गुणा न चास्य ज्ञायन्ते न चास्य प्रथितं यशः। स्तोत्रं किमाश्रयं त्वस्य कार्यमस्माभिरुच्यताम् ॥५५॥

ऋषय ऊचुः

करिष्यत्येष यत्कर्म चक्रवर्ती महाबलः। गुणा भविष्या ये चास्य तैरयं स्तूयतां नृपः ॥५६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स नृपतिस्तोषं तच्छ्रुत्वा परमं ययौ। सद्गुणैः श्लाघ्यतामेति तस्माल्लभ्या गुणा मम ॥५७॥
तस्माद्यदद्य स्तोत्रेण गुणनिर्वर्णनं त्विमौ। करिष्येते करिष्यामि तदेवाहं समाहितः ॥५८॥
यदिमौ वर्जनीयं च किञ्चिदत्र वदिष्यतः। तदहं वर्जयिष्यामीत्येवं चक्रे मतिं नृपः ॥५९॥
अथ तौ चक्रतुः स्तोत्रं पृथोर्वैन्यस्य धीमतः। भविष्यैः कर्मभिः सम्यक्सुस्वरौ सूतमागधौ॥६०॥

कुण्ठित नहीं होता है, उन सभी चक्रवर्ती राजाओं के हाथ में चक्र का चिह्न होता है ॥४६॥ वेन के पुत्र, महाप्रतापी, महातेजस्वी महाराज पृथु धर्म के जानकार महापुरुषों द्वारा उस महान् राजराजेश्वर के पद पर अभिषिक्त हुए ॥४७॥ उनके पिता वेन के द्वारा अपरञ्जित (असन्तुष्ट) की गयी प्रजा को उन्होंने अनुरञ्जित किया । उनके प्रति प्रजाओं का अनुराग (स्नेह) होने के कारण वे राजा कहलाये ॥४८॥ जब महराज पृथु समुद्र में चलते थे तो उस समय समुद्र का जल रुक जाता था, पर्वत उनको मार्ग प्रदान कर देते थे और उनका ध्वज भङ्ग कभी नहीं हुआ ॥४९॥ केवल सङ्कल्प मात्र से विना जोते ही पृथिवी से अन्न उपजता था । सभी गायें कामधेनु हो गयी थीं और जब वे वन में जाते थे तो वृक्ष के प्रत्येक कोटर में अन्न आदि भोग्य पदार्थ भरे रहते थे ॥५०॥ उत्पन्न हुए महाराज पृथु ने पैतामह यज्ञ किया तो उसमें सोमाभिषव की भूमि से महाज्ञानी सूत की उत्पत्ति हुयी ॥५१॥ उसी महायज्ञ में बुद्धमान मागध की भी उत्पत्ति हुयी । उसके पश्चात् मुनीश्वरों ने सूत तथा मागधों से कहा ॥५२॥ तुमलोग वेन के पुत्र महाराज पृथु की स्तुति करो । तुम दोनों के करने योग्य यही कार्य है, और महाराज भी स्तुति करने योग्य हैं ॥५३॥ उसके पश्चात् उन दोनों ने सभी ब्राह्मणों से हाथ जोड़ कर कहा ये तो आज ही उत्पन्न हुए महाराज का कोई भी कर्म हमें ज्ञात नहीं है ॥५४॥ अभी इनके न तो गुण प्रकट हुए हैं और इनका न तो यश ही प्रख्यात हुआ है । तो आपलोग बतलायें कि हमलोग किस आधार पर इनकी स्तुति करें ?॥५५॥ **ऋषियों ने कहा—** ये महाबली चक्रवर्ती महाराज, भविष्यत् काल में जिन कर्मों को करेंगे तथा इनके जो गुण होंगे उन्हीं से तुमलोग इनकी स्तुति करो ॥५६॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उन बातों को सुनकर महाराज पृथु को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुयी और उन्होंने निश्चय किया कि गुणों के द्वारा ही मनुष्य प्रशंसा का पात्र होता है, अतएव मुझे गुणों को अर्जित करना चाहिए ॥५७॥ अतएव ये दोनों आज मेरे जिन गुणों का वर्णन करें मैं सावधानी पूर्वक उन्हीं कर्मों को करूँगा ॥५८॥ और जहाँ पर ये जिन त्याज्य गुणों का

सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः। ह्रीमान्मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः ॥६१॥
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषकः। मान्यान्मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ॥६२॥
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारस्थितौ नृपः ॥६३॥
सूतेनोक्तान् गुणानित्थं स तदा मागधेन च। चकार हृदि तादृक् च कर्मणा कृतवानसौ॥६४॥
ततस्तु पृथिवीपालः पालयन्पृथिवीमिमाम्। इयाज विविधैर्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः॥६५॥
तं प्रजाः पृथिवीनाथमुपतस्थुः क्षुधार्दिताः। ओषधीषु प्रणष्टासु तस्मिन्काले ह्यराजके।
तमूचुस्ते नताः पृष्टास्तत्रागमनकारणम् ॥६६॥

प्रजा ऊचुः

अराजके नृपश्रेष्ठ धरित्र्या सकलौषधीः। ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥६७॥
त्वन्नो वृत्तिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः। देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ॥६८॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्तु नृपतिर्दिव्यमादायाजगवं धनुः। शरांश्च दिव्यान्कुपितः सोन्वधावद्वसुन्धराम्॥६९॥
ततो ननाशत्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा। सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्सन्त्रासादगमन्मही॥७०॥
यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भूतधारिणी। तत्र तत्र तु सा वैन्यं ददृशेऽभ्युद्यतायुधम्॥७१॥
ततस्तं प्राह वसुधा पृथुं पृथुपराक्रमम्। प्रवेपमाना तद्बाणपरित्राणपरायणा ॥७२॥

पृथिव्युवाच

स्त्रीवधे त्वं महापापं किं नरेन्द्र न पश्यसि। येन मां हन्तुमत्यर्थं प्रकरोषि नृपोद्यमम्॥७३॥

वर्णन करेंगे मैं उनका परित्याग करूँगा, इस तरह से महाराज पृथु ने निश्चय किया ॥५९॥ उसके बाद उन दोनों सूत एवं मागधों ने बुद्धिमान् महाराज पृथु की अच्छी तरह सुन्दर स्वर में भविष्यत् कर्मों के द्वारा स्तुति की ॥६०॥ उन दोनों ने कहा महाराज, सत्यवक्ता, दान करने वाले, सत्यसन्ध (सत्यप्रतिज्ञ या सत्य मर्यादा वाले), लज्जाशील, सुहृद, क्षमाशील, पराक्रमी, दुष्टों का दमन करने वाले, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, प्रियवक्ता, सम्माननीय पुरुषों को सम्मान प्रदान करने वाले, यज्ञ करने वाले, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों के भक्त) सज्जन पुरुषों के अभिमत, शत्रु तथा मित्र दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार करने वाले होंगे ॥६१-६२॥ इस प्रकार सूत तथा मागध के द्वारा वर्णन किए गये गुणों को महाराज पृथु ने अपने हृदय में धारण किया और उसी के अनुसार उन्होंने कार्यों को भी किया ॥६४॥ उसके पश्चात् महाराज पृथु पृथिवी का पालन करते हुए बहुत अधिक दक्षिणा वाले अनेक यज्ञों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना की ॥६५॥ उस समय अराजकता के कारण भूख से व्याकुल प्रजा महाराज पृथु के पास गयी, महाराज के द्वारा प्रजाओं के आगमन का कारण पूछे जाने पर प्रजाओं ने उन्हें प्रणाम करके कहा ॥६६॥ **प्रजाओं ने कहा—** हे राजश्रेष्ठ ! अराजकता के समय पृथिवी ने सम्पूर्ण ओषधियों को अपने में छिपा लिया है । हे प्रजेश्वर ! आपकी सारी प्रजा क्षीण हो रही है ॥६७॥ ब्रह्माजी ने आपको हमलोगों को वृत्ति प्रदान करने वाला प्रजापालक बनाया है । हम सभी भूखे हैं, अतएव आप हमलोगों को जीवनोपयोगी औषधि (अन्न) प्रदान करें ॥६८॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् क्रुद्ध राजा पृथु अपने अजगव धनुष तथा दिव्य बाणों को उठाकर पृथिवी के पीछे दौड़े ॥६९॥ उससे भयभीत होकर पृथिवी गौ का रूप धारण करके ब्रह्मलोक आदि सभी लोकों में गयी ॥७०॥ सभी भूतों को धारण करने वाली पृथिवी जहाँ-जहाँ गयी वहाँ-वहाँ पर उसने आयुध धारण किए हुए वेन के पुत्र महाराज पृथु को देखा॥७१॥

पृथुरुवाच

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि । बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥७४॥

पृथिव्युवाच

प्रजानामुपकाराय यदि मां त्वं हनिष्यसि । आधारः कः प्रजानां ते नृपश्रेष्ठ भविष्यति ॥७५॥

पृथुरुवाच

त्वां हत्वा वसुधे बाणैर्मच्छासनपराङ्मुखीम् । आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥७६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः प्रणम्य वसुधा तं भूयः प्राह पार्थिवम् । प्रवेपिताङ्गी परमं साध्वसं समुपागता ॥७७॥

पृथिव्युवाच

उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः । तस्माद्वदाम्युपायं ते तं कुरुष्व यदीच्छसि ॥७८॥

समस्ता या मया जीर्णा नरनाथ महौषधीः । यदीच्छसि प्रदास्यामि ताः क्षीरपरिणामिनीः ॥७९॥

तस्मात्प्रजाहितार्थाय मम धर्मभृतां वर । तं तु वत्सं कुरुष्व त्वं क्षरेयं येन वत्सला ॥८०॥

समां च कुरु सर्वत्र येन क्षीरं समन्ततः । वरोषधीबीजभूतं बीजं सर्वत्र भावये ॥८१॥

श्रीपराशर उवाच

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः । धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥८२॥

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले । प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराऽभवत् ॥८३॥

न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः । वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥८४॥

उसके पश्चात् महा पराक्रमी महाराज पृथु से प्राणों को बचाने की कामना से भयभीत तथा काँपती हुयी पृथिवी ने कहा॥७२॥ राजन् ! क्या आप स्त्री का वध करने से होने वाले पाप को नहीं देखते है कि मुझको मारने के लिए इतना अधिक प्रयास कर रहे हैं ?॥७३॥ **पृथु ने कहा—** एक पापी को मार देने से यदि अनेक लोगों का कल्याण होता है तो फिर उसको मार देना ही पुण्यकारक है ॥७४॥ **पृथिवी ने कहा—** हे राजवर्य ! यदि आप प्रजाओं का उपकार करने के लिए मुझे मारना चाहते हैं तो मेरे मर जाने के बाद आपकी प्रजाओं का आधार क्या होगा ?॥७५॥ **पृथु ने कहा—** ऐ मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाली पृथिवी मैं तुम्हे बाणों से मारकर अपने योग के बल पर प्रजाओं को धारण करूँगा ॥७६॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् भय से काँपती हुयी पृथिवी ने पृथिवी पति महाराज पृथु को पुनः प्रणाम करके कहा ॥७७॥ **पृथिवी ने कहा—** राजन् ! उपाय पूर्वक किए जाने वाले सभी कार्य सिद्ध होते है; अतएव मैं आपको उपाय बतलाती हूँ, यदि आप चाहें तो उसे करें ॥७८॥ हे नरनाथ ! मैंने जिन औषधियों को पचा लिया है उन सबों को दुग्धरूप से परिणत करके दे सकती हूँ ॥७९॥ अतएव हे धार्मिकों में श्रेष्ठ! प्रजाओं का कल्याण करने के लिए आप ऐसे बछड़े को बनाइये जिससे वात्सला मैं उन सबों का दुग्धरूप से क्षरण कर सकूँ ॥८०॥ आप मुझको समतल बना दीजिये जिससे मैं औषधियों के बीज रूप दुग्ध को सर्वत्र उत्पन्न करूँ ॥८१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् महाराज पृथु ने अपने धनुष की कोटि (किनारे) से सैकड़ों तथा हजारों पर्वतों को उखाड़ कर एकत्र कर दिया उसी से पर्वत बढ़ गये ॥८२॥ इससे पहले पृथिवी के समतल नहीं होने के कारण पृथिवी पर ग्रामों तथा नगरों का कोई विभाग नहीं था ॥८३॥ उस समय पृथिवी पर कृषि, गौ रक्षा अथवा व्यापार का कोई भी क्रम नहीं था । ये सब के महाराज पृथु से ही प्रारम्भ हुए ॥८४॥ हे द्विजोत्तम ! जहाँ-

यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीद्द्विजोत्तम। तत्र तत्र प्रजाः सर्वा निवासं समरोचयन् ॥८५॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा। कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रणष्टास्वोषधीषु वै ॥८६॥
स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्। स्वपाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः।
सस्यजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया ॥८७॥
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेद्यापि नित्यशः ॥८८॥
प्राणप्रदाता स पृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता। ततस्तु पृथिवीसंज्ञामवापाखिलधारिणी ॥८९॥
ततश्च दवैर्मुनिभिर्दैत्यै रक्षोभिरद्रिभिः। गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुभिस्तथा ॥९०॥
तत्तत्पात्रमुपादाय तत्तद्दुग्धं मुने पयः। वत्सदोग्धृविशेषाश्च तेषां तद्योनयोऽभवन् ॥९१॥
सैषा धात्री विधात्री च धारिणी पोषणी तथा। सर्वस्य तु ततःपृथ्वी विष्णुपादतलोद्भवा ॥९२॥
एवं प्रभावस्स पृथुः पुत्रो वेनस्य वीर्यवान्। जज्ञे महीपतिः पूर्वो राजाभूज्जनरञ्जनात् ॥९३॥
य इदं जन्म वैन्यस्य पृथोः संकीर्त्तयेन्नरः। न तस्य दुष्कृतं किञ्चित्फलदायि प्रजायते ॥९४॥
दुस्स्वप्नोपशमं नृणां श्रृण्वतामेतदुत्तमम्। पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सततं नृणाम् ॥९५॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

जहाँ पृथिवी समतल थी वहाँ-वहाँ पर प्रजाओं ने अपना निवास स्थान बनाना पसन्द किया ॥८५॥ उस समय औषधियों (अन्नों) के विनष्ट हो जाने से प्रजाओं का आहार फल-फूल ही था, और वह भी बड़े ही कष्ट से प्राप्त होता था। उसके पश्चात् महाराज पृथु ने स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाकर अपने हाथ पर प्रजाओं का कल्याण करने के लिए समस्त औषधियों का दोहन किया। हे तात ! उसी औषधियों (अन्नों) के आधार पर आज भी प्रजा जीवित रही है ॥८७-८८॥ प्राण प्रदान करने के कारण भूमि के पिता महाराज पृथु हुए और उसी के कारण सम्पूर्ण प्रजाओं को धारण करने वाली भूमि का नाम पृथ्वी हुआ ॥८९॥ उसके पश्चात् हे मुने ! देवताओं, मुनियों, दैत्यों, राक्षसों, पर्वतों, गन्धर्वों, सर्पों, यक्षों, पितरों तथा वृक्षों ने विभिन्न प्रकार के पात्रों को लेकर विभिन्न प्रकार के दुग्धों का दोहन किया। उन दोहन करने वालों के सजातीय ही दोग्धा तथा वत्स भी हुए ॥९०-९१॥ उसी के कारण श्रीभगवान् के चरण के तलवे से उत्पन्न होने वाली पृथिवी सबों की धात्री (जन्म देने वाली) विधात्री बनाने वाली धारिणी (धारण करने वाली) तथा पोषणी (पोषण करने वाली) हुयी ॥९३॥ इस तरह से प्रभाव से सम्पन्न होने के कारण वेन के प्रतापी पुत्र महाराज पृथु प्रजाओं का रञ्जन करने के कारण सर्वप्रथम राजा हुए ॥९३॥ जो मनुष्य वैन्य (पृथु) के इस जन्म की कथा को पढ़ेगा उसके द्वारा किया गया कोई भी पाप कर्म फलप्रद नहीं होगा ॥९४॥ जो मनुष्य पृथु के इस उत्तम जन्म तथा प्रभाव का सदा श्रवण करता है, उसको दीखने वाले दुःस्वप्न विनष्ट हो जाते हैं ॥९५॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥